P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
E: ISSN NO.: 2349-980X Vol-III* Issue-II* October-2015

अभिराजराजेन्द्रमिश्र के कथा–साहित्य में दलित विमर्श

अशोक कंवर शेखावत
व्याख्याता,
संस्कृत विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
झालावाड़, राजस्थान

सारांश

अभिराजराजेन्द्रमिश्र अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार हैं। समकालीन समाज उनके साहित्य में स्फटिक् के समान प्रतिबिम्बित होता है। समाज की दशा एवं दिशा पर उनकी सूक्ष्म दृष्टि है। सामाजिक परिवर्तन एवं स्वस्थ समाज की संरचना के लिए जिम्मेदार साहित्यकार के रूप में उन्होंने अपनी कथाओं को सशक्त माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया है। समाज के दलित, शोषित एवं पीड़ित वर्ग के हृदय के साथ एकाकार होते हुए उन्होंने एक संतुलित समाज का मार्ग प्रवृत्त किया है। उनके कथा साहित्य में दलित समाज के प्रति संवेदनशील विमर्श प्राप्त होता है।

मुख्य शब्द : ईशावास्यमिदं सर्वं, ब्रह्मैव इदं विश्वम्, विश्वे अमृतस्य पुत्राः, स्वाहा, इदं न मम्, अहं ब्रह्माऽस्मि, तत् त्वमसि, सर्वमदिं, जगत् ब्रह्ममयं, ब्रह्मसत्यं जगत् मिथ्या, संगच्छध्वं, संवदध्वं, आकूतिः, प्रचोदयात्, बहुजनहिताय, शिवसंकल्पमस्तु, विश्ववारा।

प्रस्तावना

'दलित' पद दल् धातु से क्त प्रत्यय लगकर बना है। दल् धातु ट्टना, फटना, दरार आ जाना, काटना, बांटना, टुकड़े–टुकड़े करना, कुचलना, पीसना आदि अर्थ देती है अर्थात् दलित शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्थ कुचला हुआ, पिसा हुआ, टूटा हुआ, निकलता है। समाज के सन्दर्भ में हम कह सकते है समाज का वह वर्ग जो दबा हुआ है, कुचला हुआ, पिसा हुआ, शोषित है। समाज का एक वर्ग तो ताकतवर है, धनी है, प्रभुत्व वर्ग का जो कि निर्धन है, कमजोर है, सेक्क है, शोषण करता है। यही कमजोर, निर्धन व शोषित वर्ग दलित वर्ग कहलाता है।

अंग्रेजी में इसी दलित वर्ग को depressed class के रूप में परिभाषित किया गया है। depress का अर्थ Push or pull down, lower make dispirited or dejected और adjection ds रूप में depressed का अर्थ है dispirited or miserable मनोवैज्ञानिक तौर पर depressed का अर्थ है suffering from depression (based on latin pressare' to keep pressing)

हम कह सकत है कि यही मनोवैज्ञानिक अर्थ to keep pressing ही दलित का पर्याय है। समाज का एक ऐसा वर्ग जिसे निरन्तर दबाया गया हो, कुचला गया हो अथवा मानसिक, शारीरिक एवं आर्थिक स्तर पर तोड़ा गया हो।

दलित या कमजोर वर्ग के अन्तर्गत समाज के उस वर्ग को सम्मिलित किया जाता है, जो सामाजिक, आर्थिक सुविधाओं से वंचित, शोषित, पिछड़ा हुआ हो। इन मानदण्डों के आधार पर अनुसूचित जातियों, पिछड़े वर्गों, लघु तथा सीमान्त कृषकों, भूमिहीन, मजदूरों एवं परम्परागत कारीगरों को कमजोर, शोषित अथवा दलित वर्ग में माना गया है। दलित वर्ग प्रायः अस्पृश्य अथवा अछुत की परिधि में भी माना जा सकता है।

रूचि, क्षमता, योग्यता, प्रतिभा, आयु, ज्ञान एवं चयन पर आधारित तार्किक एवं व्यवस्थित सामाजिक वर्णव्यवस्था से समन्वित भारतीय संस्कृति में कालान्तर में वर्णव्यवस्था जातिव्यवस्था में परिणत हो गई। वर्ण पद में स्थित 'वृ' धातु वरण अथवा चयन को द्योतित करती है। इसका अर्न्तनिहित अर्थ यह निकलता है कि पुराकाल में मनुष्य अपने कार्य अथवा वर्ण का चयन करता था तथा इन वर्णो में एक वर्ण से दूसरे वर्ण में प्रवे"ा का मार्ग खुला रहता था। शनै–"ानै पारिवारिक वातावरण, व"ापरम्परागत कार्य कु"ालता तथा एक पीढी से दूसरी पीढी में पैतृक व्यवस्था के हस्तान्तरित होते रहने के कारण रोजगार, व्यवसाय अथवा कार्य योग्यता एवं क्षमता से हटकर जन्मना प्राप्त होने लगे। जाति पद जन्मना ब्राह्मण, क्षत्रिय, वै"य अथवा शूद्र होने की ओर संकेत करता है जबकि ये पद स्वयं कर्म पर आधारित ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व अथवा वै"यत्व होने की ओर संकेत करते है।

जब से इस सामाजिक वर्गीकरण का आधार योग्यता न होकर जन्मना हो गया वही से विडम्बना प्रारम्भ हो गई। व्यर्थ श्रेष्ठता के अभिमान रूपी रोग ने निम्न वर्ग में जन्म लेने वाले व्यक्ति के साथ हेय व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहित किया। परिणाम स्वरूप श्रेष्ठ वर्गो में गिने जाने वाले लोग अयोग्य होते हुए भी उस वर्ग से बाहर आना नही चाहते थे। तथा हीन वर्गो में जो श्रेष्ठ लोग थे, उनको श्रेष्ठ वर्ग में आने नही देते थे। जन्मगत श्रेष्ठता जन्मगत हीन वर्ग के शोषण का आधार बन गया। इस प्रकार समाज में दो वर्ग हो गए–सवर्ण और अवर्ण अथवा शोषक और शोषित। सवर्णो के द्वारा निरन्तर शोषण एवं अमानवीय व्यवहार से शूद्रों अथवा अवर्णो में हेयता का भाव घर करने लगा। वर्ण व्यवस्था में जहां सद्भाव एवं सदाचार के साथ सभी वर्ग अपनेअपने वर्ग में रहते हुए सामाजिक विकास एवं कल्याण का कार्य करते थे वहीं अब सवर्ण एवं अवर्ण के बीच एक गहरी खाई बन गई। धीरे–धीरे लोग अपने परम्परागत कार्यो अथवा व्यवसाय को छोडकर पलायन का रास्ता अपनाने लगे। सवर्ण एवं अवण का संघर्ष एवं द्वेष निरन्तर बढता जा रहा है।

कविवर ने समाज की इस विसंगति पर प्रहार करते हुए सही दि"ाा देने का प्र"ांसनीय कार्य किया है। प्रजातंत्र में वोटों की राजनीति ने स्वार्थपरता के कारण इस मतभेद को ओर गहराने का प्रयास किया है। इसी पर प्रहार करते हुए व कहते है 'पराकाष्ठामधिरूढें' सति मतसंग्रहलोलुप"ाासनोत्थापिते सवर्णाऽसवर्णसंघर्षे सम्प्रति कोऽपि युवा चर्मकारः पारम्परिकं ग्रामकार्यं कर्तुं नेच्छिति।..... .....त्रुटिताः सम्प्रति सेव्यसेवकसम्बन्धाः। समुच्छिन्नाः समाजबन्धनक्षमा मिथःस्सहयोगप्रणयादिमर्यादाः।''[1]

वर्ण व्यवस्था इस बात की प्रतीक है कि सम्पूर्ण सृष्टि में प्रकृति प्रदत्त भिन्नता हैं कहीं भी साम्य अथवा अद्वैत नहीं है। समस्त प्राणियों के रंग, वर्ण, गुण एवं वि"ाष्टिताएं अलग–अलग है। सकल वनस्पति समुदाय विलक्षण वि"ोषताओं के कारण विधर्मा है। तो फिर मनुष्यों में विद्यमान भिन्नता की निन्दा क्यों की जाती है? क्या शासन सभी पशुओं, पक्षियों, वनस्पतियों, मनुष्यों को समरूप करने में समर्थ है? राजनैतिक, स्वार्थपरता पर प्रहार करते हुए कविवर कहते है–''असवर्णान् मृषावादैरूद्दीप्य सवर्णविरोधि"च तान् विधाय शासनं मतसंग्रहव्याजेन स्वार्थं साधयति। परन्तु चिरकालादखण्डितम् अविद्धम अविपर्यस्तं वि"वसनीयं संवादिञ्च प्रणयसम्बन्धं द्राग् विच्छिन्नं दृष्ट्वा न जायते तस्य कापि चिन्ता?''[2]

हर काल में अत्याचारी एवं क्रूर शासक हुंए है। रावण, कंस, f"ा"ुपाल, औरंगजेब, नादिर"ााह आदि नाम आततायी शासकों में आते है। परन्तु ये अपवादस्वरूप है। शेष असंख्य शासक दयालु, उदार एवं सत्पुरूष हुए है। इन बहुसंख्यक सज्जन पुरूषों के द्वारा ही समाज का निर्माण होता है न कि मुट्ठी भर लोगों से। कवि की दृष्टि में संवर्ण असवर्ण में कोई भेद नहीं है। सभी वर्गो में अमीर–गरीब, सम्पन्न–विपन्न, अच्छे बुरे मनुष्य मिलते है। आर्थिक व शारीरिक दृष्टि से सभी मनुष्य समान नही हो सकते। हाँ मानसिक एवं हार्दिक साम्य हो सकता है। कवि कहते है–'' का वि"ोषः सवर्णऽसवर्णयोंः? यदि नामोभयोः हृदयं समरसं तर्हि न कोऽपि भेदस्तयोः। सवर्णेष्वपि किमसवर्णकल्पा निर्धना न वर्तन्ते? किं सवर्णेष्वसवर्णेषु वा सर्वेऽपि समाना एव? अर्थसाम्यप्रयासापेक्षया हृदयसाम्यस्थापनप्रयासः सुकरः उपादिय"च प्रतिभाति।..... प्रेम समग्रपि भेदं समापयति। प्रेमद्रुमः पीयूषफलं जनयति। नात्र क"ि"चत्संदेहः।''[3]

'संकल्पः' कथा में अपने पैतृक व्यवसाय का छोड़कर पलायन कर रहे, अन्य युवकों की तरह निहोर का पुत्र 'मोगीराम' भी शहर जाना चाहता है। उसे लगता है कि शहरों में सम्मान हैं। गांवो में उनकी पहचान केवल शूद्र अथवा असवर्ण के रूप में ही होती हैं।

उसका मन इस जाति व्यवस्था के बन्धन को तोड़कर जाना चाहता है। परन्तु निहोर कहता है कि ऐसा नहीं है, समाज बदल रहा है, लोगों का दृष्टिकोण बदल रहा है। अब कार्य के आधार पर ऊंच नीच का व्यवहार नहीं होता है। निहोर के शब्दों में बदलते सामाजिक दृष्टिकोण की झलक हैं। वह कहता है–'' सम्प्रति समुज्जृम्भते नूतनस्समाजो यत्र मानवः स्वगुणैरेव प्रतिष्ठितो न पुनः स्वजात्या।''[4]

'कुलदीपक' कथा में वकील महोदय की जाति से जुड़ी भ्रामक अवधारण को निर्मूल सिद्ध करते हुए उनकी पत्नी कहती है–''अपराधस्तु न जातिं कुलं वाऽश्रयन्ति। किं सर्वेऽपि दस्यवः खटिका एव? किं सर्वेऽपि चम्बलदस्यवः खटिका एव? न ब्राह्मणाः? न क्षत्रियाः? न वै"याः? कोऽयं भवतां व्यामोहः? यदि खटिककुलात्पन्नोऽपि सोमधरो मेधावी सु"ाील सद्गुणसम्पन्नः किं तर्हि नासौ अभिनन्दनीयः?[5]

'अभिनय' लघुकथा महादेवी द्वारा घसीटा नामक किसी दरिद्र बालक के पालन पोषण की प्र"ांसा तथा साथ ही f"ाक्षिका जैसे गौरवमय पद को धारण करने वाली श्यामा के अपनी गृहसेविका के प्रति कठोर व्यवहार की भर्त्सना करते हुए उसके कपटाभिनय का रहस्यभेदन करती है।

'प्रति"ोध' लघुकथा का स्वामी बिना किसी जाँच–पडताल के सन्देह के आधार पर अपने सेवक विभुराम को जेल जाने देता है। यहो अन्याय पूर्ण व्यवहार 'प्रति"ोध' का आधार बनता है।

कवि की एक और लघुकथा 'वेतनम्' एक दैनिक वेतन भोगी मजदूर की विव"ाता, दयनीयता, को मार्मिक रूप से व्यक्त करती है।

इस प्रकार अभिराज राजेन्द्र मिश्र की कथाएं समाज के दलित वर्ग के प्रति संवेदन"ाील है, उनकी पीड़ाओं को महसूस करती है, उनके हृदयों का रहस्योदघाट्न करती है, उन भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करती है, उस पर प्रहार करती है। परन्तु साथ ही बदलते सामाजिक परिदृ"य को पहचानती है और उज्ज्वल भविष्य एवं वर्गभेद रहित समाज की परिकल्पना प्रस्तुत करती है। कविवर जानते ह कि समाज में भेदभाव है, शोषण है, वर्गभेद है परन्तु तार्किक आधार पर वो समाज को दि"ाा देते है कि मनुष्य के साथ व्यवहार का आधार उसके गुण, कर्म एवं संस्कार होने चाहिए, जाति नही । हमें समाज के रत्नों का अन्वेषण कर उनका संवर्धन एवं परिरक्षण करना चाहिए। –''अनेनैव प्रकारेण रत्नान्वेषणं करणीयम्। सर्वेऽपि बालका, भगवत्स्वरूपाः। न कोऽपि सुद"ानो रूपहीनो वा।

न कोऽपि समृद्धो दरिद्रो वा। न कोऽप्यनाथस्सनाथो वा! प्राप्ते खलु सम्बले सरंक्षणे निर्गुणोऽपि सगुणों जायते। दरिद्रोऽपि समृद्धो भवति। अनाथोऽपि सनाथो जायते।''[6]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा कथासंग्रह, पृष्ठ–45
2. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा कथासंग्रह, पृष्ठ–47
3. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा कथासंग्रह, पृष्ठ–47
4. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा कथासंग्रह, पृष्ठ–51
5. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, राङ्गडा कथासंग्रह, पृष्ठ–4
6. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, चित्रपर्णी कथासंग्रह, पृष्ठ–12